सीखना और सृजनशीलता

❑ दिनेश पटेल

कला शिक्षण को सामान्यत: स्कूलों में भाषा, गणित या पर्यावरण अध्ययन के समकक्ष नहीं माना जाता । शिक्षकों का जोर कोर–विषयों पर ही ज्यादा होता है, इससे बच्चों की भी ऐसी मान्यता बन जाती है । जबकि कला विधाओं यथा पेन्टिंग, संगीत, नृत्य, नाटक आदि में बच्चों की कल्पनाशीलता और सृजनशीलता के लिए कहीं ज्यादा अवकाश होता है । यही नहीं कलाओं में बच्चों की अभिरुचि से सीखने की समग्र प्रक्रिया अधिक सहज और आनंददायी बन जाती है । इस टिप्पणी में यही अनुभव व्यक्त हुआ है ।

सीखना एक सहज व स्वाभाविक प्रक्रिया है । बच्चे अपने आसपास पर्यावरण में बिखरी हुई तमाम बेकार समझी जाने वाली चीजों से विभिन्न क्रियाकलापों व कबाड़ से जुगाड़ के जरिये बहुत कुछ सहज रूप से सीखते हैं । साथ ही वे कुछ भी सीखने-करने के लिए अपने आप कई तरीके ईजाद कर लेते हैं । जरूरत होती है उन्हें महज सही मार्गदर्शन व उचित परिवेश मुहैया कराने की । वे कब कौनसी चीज का सृजन कर बैठेंगे कहना मुश्किल है । बशर्ते कि आप उनके सीखने की इस सहज प्रक्रिया में बगैर किसी हस्तक्षेप के खुद भागीदार बनने की मंशा जाहिर करें ।

जब कभी भी बच्चों में कोई रचनात्मक हुनर नजर आने लगता है तब अक्सर होता ये है कि हम ये अपेक्षा करने लगते हैं कि बच्चा अपने हुनर में और अधिक पारंगत होकर भविष्य में अपना नाम कमाए । तब फिर वे इसके लिए क्या करते हैं ? किसी शिक्षक को ढूंढेंगे या किसी प्रशिक्षण शिविर या फिर किसी सामाजिक, सांस्कृतिक संस्था द्वारा आयोजित किए जाने वाले विशेषकालीन प्रशिक्षण शिविरों में बच्चों को भेजकर अपनी जिम्मेदारी की इतिश्री समझ लेते हैं। हम कभी भी उनके इन सहज रूप से किए जाने वाले विभिन्न क्रियाकलापों में, जिसमें उनकी गजब की आनंदानुभूति व रूचि झलकती है, दिलचस्पी नहीं दिखाते । बनिस्पत किसी प्रोत्साहन के अमूमन वे हतोत्साहित ही किए जाते रहते है । यहां हमें ये समझने की जरूरत है कि हम अपने बड़े होने के अहंकार को छोड़कर उनके इन क्रियाकलापों में सहभागी बनने की कोशिश करें बजाय किसी हस्तक्षेप के ।

स्कूलों की आमतौर पर ये मान्यता रही है कि छोटे बच्चों को तो एक विशेष किस्म की तयशुदा कथित चित्रकारी, कुछ चुटकुले वगैरह तथा शिक्षकों द्वारा रटवाई जाने वाली पाठ्यपुस्तकों की कविताओं के अतिरिक्त और कुछ विशेष आता ही नहीं । अब चित्रकला को ही लें । इसमें बच्चों से किताबों में दिए गए रेखाचित्रों में अक्सर केवल रंग भरवाया जाता है । और दिलचस्प बात ये है कि इसी को हम चित्रकला समझ बैठे हैं । गड़बड़ की शुरूआत भी दरअसल यहीं से होती है । जबकि सच कुछ और ही है । शिक्षक स्वयं भी बच्चों के चित्रों का मूल्यांकन मुख्यत: इसी आधार पर करते हैं कि उन्होंने चित्रों को कितनी सफाई से बनाया है । उसमें रंग-संयोजन कैसा है तथा लाइन से बाहर तो रंग नहीं निकल गए हैं यही देखते हैं यानी सब कुछ निहायत साफ-सुथरा व व्यवस्थित होना चाहिए । और यही सब बड़े बच्चों के साथ भी दोहराया जाता है । इस तरह ये पूरी प्रक्रिया तयशुदा फार्मूलों से शनै:-शनै: आगे बढ़ते हुए पेड़, फूल-पत्तियां, पहाड और उनके बीच में से झांकता हुआ उगता सूरज, नदी, नाव या बहुत हुआ तो किसी देवी-देवता का या फिर किसी महापुरुष का पोट्रेट .... आदि में सिमटकर रह जाती है । इससे इतर वे अपनी मर्जी से नया कुछ सोच पाने की जरूरत नहीं समझते । बहुत कम बच्चे इस पैटर्न से हटकर कुछ नया कर पाने की कोशिश करते हैं । और अगर इस तरह की कोशिशें की भी जाएं तो उन्हें बगैर किसी प्रोत्साहन के अमूमन दरकिनार करने की ही कोशिश की जाती है ।

इस पूरी प्रक्रिया में उन्हें बाकायदा तयशुदा नियम-कानूनों के चलते ही सब कुछ करना पड़ता है जो वे खुद भी पसंद नहीं करते। बावजूद इसके वे उन सब बातों पर अधिक तवज्जो न देते हुए वही करते हैं जो वे ठीक समझते हैं । अन्यथा करते ही नहीं, कि कौन पचड़े में पड़े। और इस तरह से हमला होता है बच्चों की अभिव्यक्ति पर क्योंकि एक अजीब सा भय उनके दिलो-दिमाग में बैठ जाता है जिसके चलते वे अपने अंदर मौजूद तमाम हुनरों को स्वतंत्रतापूर्वक अभिव्यक्त नहीं कर पाते ।

फिर बच्चे सवाल करते हैं - ''सर आप ही बना दीजिए न !'' ''हमसे यह सब नहीं बनता ।'' या फिर ''मैडम आप थोड़ा सा बता दीजिए न .. ।'' फिर वही होता है जो शिक्षक चाहते हैं।

कोई चित्र अपनी ओर से बोर्ड पर बनाकर बताते हैं और फिर सभी बच्चे हूबहू उसी की नकल करते हैं और बाकायदा रंग संयोजन भी कर लेते हैं, और सफल भी हो जाते हैं, शिक्षक साथी भी इसी को सफलता का पैमाना मानते हैं । शिक्षक और विद्यार्थी के बीच इस तरह की प्रक्रियाएं लगातार जारी हैं । इन प्रक्रियाओं को रोकना या ऐसे ही किसी तरह के संशोधन की कोई गुंजाइश की उम्मीद करना या लीक से हटकर कुछ सोच पाने की जुगत भिड़ाना फिलहाल मुनासिब नहीं जान पड़ता । लेकिन निराश होकर बैठ जाने भर से भी कुछ हासिल नहीं हो सकता । जब तक कि हम सकारात्मक नजरिया नहीं अपना लेते । बच्चों के साथ सहभागितापूर्ण ढंग से अगर आप कुछ कर रहे हैं तो वाकई आपको ये जानकर हैरानी होगी, कि बच्चे किस अद्भुत तरीके से नई चीजों को गढ़ते हैं जो अपने आप में किसी आविष्कार से कम नहीं है। जरूरत हमें सिर्फ अपनी सोच में बदलाव भर की है ।

ऐसा ही एक अनुभव आपके सामने रखते हैं जो *एकलव्य* देवास में बच्चों के बीच सृजनात्मक गतिविधियां करते हुए मैंने महसूस किया । हमने बच्चों को अलग-अलग समूह में कुछ कोरे कागज देकर उनसे पांच मिनट थोड़ी चर्चा के पश्चात कहा कि अपने आसपास की चीजों को देखकर चित्र बनाइये । जैसे - बाजार का दृश्य, बस स्टैण्ड का नजारा, सड़क पर चलती हुई गाड़ियों की कतारों के चित्र, किसी मेले का चित्र, या फिर किसी ग्रामीण इलाके का चित्र, जंगली जानवरों व पक्षियों के झुण्ड...आदि। कुछ देर तो बच्चे सोचते रहे कि कैसे बनेगा। फिर धीरे-धीरे एक-दो ने शुरुआत की, फिर सभी अपनी कल्पनाओं/स्मृतियों को साकार करने में जुट गए । उन्होंने अपने भावों को विभिन्न प्रकार की विविधरंगी चित्राकृतियों के रूप में कागज पर उतारना शुरू कर दिया था। और देखते ही देखते बच्चों ने जिस खूबसूरती से चित्रों को संवारा था वह देखते ही बनता था । अपने चित्रों में बाजार की भीड़, मैदान में उछल-कूद करते बच्चे, क्रिकेट खेलती हुई बच्चों की टीम, छत पर पतंग उड़ाते बच्चे, साइकिल चलाते हुए बच्चे ... आदि ऐसी ही तमाम चीजें बच्चों ने अपने चित्रों में प्रदर्शित कीं । सचमुच ये हैरान करने वाली बात थी । आप देखिये कि बच्चे जिस माहौल में रहते हैं जो कुछ वे अपने आसपास के परिवेश से ग्रहण करते हैं उसी को उन्होंने यहां निहायत अपनी शैली में बयान किया था । और असल में यही वह खास बात है जो बच्चों को सहज रूप से बहुत कुछ अपने आप सिखाती है ।

इसी तरह मुखौटे बनाते समय उन्होंने किया । ड्राइंग शीट के छोटे-छोटे टुकड़े देकर विभिन्न प्रकार के जानवरों के मुखौटे बनाने के लिए हमने उनसे कहा, कि अपनी इच्छा से जिस किसी भी जानवर का मुखौटा आप बना सकते हैं बनाइये । फिर चाहे वो अच्छा बने या बुरा । बच्चे कहने लगे ''हमने तो ऐसे कभी बनाए ही नहीं, आप पहले बता दो फिर हम बना लेंगे ।'' कुछ देर की ना-नुकुर के बाद बच्चों ने स्वयं शुरुआत की। अपने ही बनाए हुए मुखौटों पर आश्चर्य हो रहा था उन्हें । कुछ बच्चों ने एक-दूसरे की नकल भी की, परन्तु देखिए कि जिन कुछ बच्चों ने एक ही तरह के मुखौटे बनाए थे वो सब भी नकल करने के बावजूद एक-दूसरे से भिन्न नजर आ रहे थे । वे खुद भी नहीं समझ पा रहे थे कि ऐसा कैसे हुआ । सही मायने में इसे कहते हैं सृजनशीलता। क्योंकि यहां नकल में भी एक किस्म की सृजनशीलता है । चूंकि प्रत्येक बच्चे ने उसे स्वयं अपने तरीके से गढ़ा है इसलिए स्वभाविक है यहां उन्होंने अपनी सृजनशीलता और अपने नजरिये का इस्तेमाल किया है । इसलिए किन्हीं भी दो बच्चों के चित्र एक जैसे नहीं हो सकते। यही वो बात है जिसे हम तथाकथित समझदार बड़ों को गंभीरता से समझना चाहिए । बच्चे जब भी कुछ रचनात्मक करने की कोशिश करते हैं तो वे बहुत ही बारीकी से, बड़े धैर्य के साथ गंभीरतापूर्वक काम करते हैं । बशर्ते कि उन्हें यहां पर्याप्त मौज-मस्ती का मौका मिले । तब उनकी रचनाओं में, खासकर चित्रों में एक खास तरह का अनूठापन एवं नयापन आपको दिखेगा । और शायद मुझे लगता है यही बात बच्चों को और बेहतर ढंग से रुचिपूर्वक गतिविधियों में सार्थक हिस्सेदारी के लिए प्रेरित करती है। उनका उत्साह बढ़ाती है ।

कला सिर्फ एक खूबसूरत चित्र भर बना देना नहीं है । हमारा मानना है कला बच्चों के व्यक्तित्व को संवारने उसे समाज में एक विशेष दर्जा देने तथा समाज में विभिन्न पहलुओं को समझने में विशेष रूप से सक्षम बनाती है । वे अपने भावों व कल्पनाओं को चित्रों के माध्यम से अभिव्यक्त कर पाते हैं । बच्चों द्वारा बनाए गए चित्रों में कई संदेश भी मौजूद होते हैं ।

कला सिर्फ एक खूबसूरत चित्र भर बना देना नहीं है । हमारा मानना है कला बच्चों के व्यक्तित्व को संवारने, उसे समाज में एक विशेष दर्जा देने तथा समाज में विभिन्न पहलुओं को समझने में विशेष रूप से सक्षम बनाती है । वे अपने भावों व कल्पनाओं को चित्रों के माध्यम से अभिव्यक्त कर पाते हैं । बच्चों द्वारा बनाए गए चित्रों में कई संदेश भी मौजूद होते हैं । एक चित्र कोई कहानी सुना सकता है, किसी भाव को दर्शा सकता है या फिर कोई बीती हुई

घटना की बातचीत को सामने रख सकता है । समाज, संस्कृति, समुदाय की छाप भी छोड़ सकता है ।

कला को बहुतायत में लोग स्कूली पाठ्यक्रम का हिस्सा नहीं मानते हैं । और वैसे भी बहुत कम बच्चे ये मानते हैं कि वे एक सृजनशील कलाकार बनेंगे और वास्तव में उन्हें ऐसे मौके भी कम ही उपलब्ध हैं । व्यावसायिक कला की तो बात ही छोड़ दें । यहां हम सिर्फ सृजनात्मक कला का जिक्र कर रहे हैं । ये बात निहायत जरूरी है कि सृजनात्मक कला गतिविधि को स्कूली पाठ्यक्रम का हिस्सा होना चाहिए । क्योंकि कला का बच्चों के समग्र विकास में बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान है । इसमें शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक अभिव्यक्ति का समन्वय होता है । इसे अन्य विषयों से फर्क के रूप में देखना कोरी मूर्खता होगी । कला अपने आप में काम करने का एक ढंग है । ये एक तरह का विज्ञान ही है । किसी ने कहा है, ''कला और विज्ञान में कई समानताएं हैं। विज्ञान दुनिया को देखने व समझने का नजरिया है । जानने की इच्छा, खोजबीन एवं नित नए-नए प्रयोग करते रहना ही कला व विज्ञान के आधार हैं।''

अक्सर जब हम बच्चों से चित्र बनाने को कहते हैं तो इस सोच में पड़ जाते हैं कि क्या बनाया जाए । लेकिन अगर माता-पिता उन्हें अपनी नानी, दादी द्वारा सुनाई गई कहानी या अन्य कोई मजेदार कहानी सुनाएं और फिर उनसे कहें कि चित्र बनाओ तो वे अवश्य ही कुछ नया कर गुजरने की कोशिश करते देखे जा सकते हैं । स्वाभाविक तौर पर बच्चे इससे प्रेरणा भी ग्रहण करते हैं । और यही प्रेरणा उन्हें कुछ नया करने को उकसाती है । बच्चों से ये उम्मीद कतई नहीं करनी चाहिए कि वे वैसा ही चित्रित करें जैसी कि आमतौर पर हमारी उनसे अपेक्षा होती है । उन्हें सिर्फ मार्गदर्शन की दरकार है न कि किसी तरह के डराने व नियंत्रित करने वाले आदेश। बल्कि चित्रकला के मामले में तो मार्गदर्शन न देना ही दरअसल सही मायने में स्वच्छंद रूप से की जाने वाली चित्रकला है । वस्तुत: अगर आप ऐसा कर पाएं तो देखेगे कि कैसे बच्चे स्वयं को बहुत कुछ सिखाते हैं, आप हैरान रह जायेंगे । ◆